International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 12 Issue 1 January. 2023 || PP. 170-172

धर्म एवं सामाजिक सद्भाव

डा. रेखा यादव
सह आचार्य दर्षन शास्त्र
राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

मानव इतिहास में धर्म अत्यन्त शक्तिषाली तत्त्व रहा है इसलिए धर्म के इतिहास में मानव इतिहास का भी अध्ययन किया जा सकता है। मानव इतिहास में शान्ति, सामाजिक सद्भाव व अहिंसा को वर्तमान दृष्टि में आदर्ष मूल्य रूप में स्वीकारा जाता है। इस आदर्ष मूल्य की प्राप्ति–अप्राप्ति की स्थितियों पर विचार करते हुए यह प्रष्न सामने आता है कि धर्म जिसका सार या उद्देष्य मानव कल्याण माना जा सकता है किस प्रकार सामाजिक सद्भाव का विरोधी तत्त्व बन जाता है। आधुनिक लोकतान्त्रिक मूल्यों से पोषित समाज में धर्म के औचित्य पर ही सवालिया निषान लग जाता है क्योंकि धर्म को ऐसा संवेदनषील क्षेत्र घोषित कर दिया जाता है कि उस पर खुली बहस, नवाचार राज्य व कानून के समक्ष एक विवाद या समस्या का रूप ले लेता है। धर्म और **सद्भाव** विषय पर विचार करते हुए यह प्रष्न उभरता है कि क्या वास्तव में धर्म मनुष्य समाज की आवष्यक मांग या मूल्य है अथवा सभ्यता या संस्कृति की विकास प्रक्रिया का ऐसा पड़ाव है जो बुद्धि के पर्याप्त विकास न होने की दषा में स्वीकार कर लिया गया ? यदि धर्म मानवीय इतिहास में एक पड़ाव मात्र होता, तो तकनीक से अतिक्रान्त इस युग में हम धार्मिक विष्वासों को मात्र इतिहास रूप में ही जानते परन्तु ऐसा नहीं है। धर्म आज भी मनुष्य की आवष्यकता है। धार्मिक विष्वास जो आस्था रूप है एक संवेदनषील मुद्दा है जिसके प्रति राज्य की सापेक्ष अथवा निरपेक्ष दोनों ही नीतियाँ शान्ति स्थापना में सफल नहीं मानी जा सकती। धर्म सापेक्ष राजनीति किसी ऐसे ही समाज में लागू हो सकती है जहाँ एक ही धर्म के लोग रहते हों परन्तु वहाँ पर धर्माधारित कानून में परिवर्तन की सम्भावनाएं स्वीकारी नहीं जाती और धर्म स्वयं जड़रूप हो जाता है। ऐसी जड़रूपता उस समाज और उसके नागरिकों की स्वतन्त्रता के लिए प्रतिगामी होती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे नागरिकों के मानव अधिकारों की रक्षा एक विवादित मुद्दा बन जाता है। धर्म निरपेक्षता एक आधुनिक मूल्य के रूप में स्वीकारा जाता है परन्तु इस समाज की कुछ कठिनाईयाँ हैं जैसे धर्म एक सामाजिक समूह के रूप में भी चिन्हित किया जाता है जिसके विष्वास, परम्पराएं व क्रिया–कलाप पर राज्य उदासीन व असम्पृक्त हो जाय यह इतना आसान नहीं जान पड़ता। जिस समाज की परम्परा के मूल में धार्मिकता हो वहाँ धर्मनिरपेक्षता एक कठोर व्यवहार तो नजर आता ही है साथ ही अधिक बौद्धिकता एवं वैज्ञानिकता उस समाज के नागरिकों के लिए अपने भावनात्मक जीवन से अलगाव की अपेक्षा करती है जो सभी के लिए सम्भव नहीं होता तथा ऐसे प्रयास में धार्मिकता के उन्माद में बदलने या बहुधार्मिक समाज में साम्प्रदायिकता के बढ़ने का खतरा और बढ़ जाता है। ऐसे समाज में 'सर्वधर्मसद्भाव' ही एक उपयुक्त मार्ग प्रतीत होता है परन्तु सर्वधर्मसद्भाव जिसके अनुसार राज्य के कानून के समक्ष सभी धर्म समान हैं के साथ–साथ एक ऐसे नागरिक समाज की अपेक्षा है जिसे धार्मिक मूल्यों की, धार्मिकता की, धार्मिक अनुभूति या विष्वास की उचित समझ हो और वह धर्म को संस्थागत रूप में पवित्र व नैतिक बनाये रखने में मदद करे तभी हम धर्म एवं शान्ति के सहअस्तित्व का सपना देख सकते हैं। इस समझ के बिना धर्म एक दियासलाई की भाँति है जिसे कभी बाजार या कभी राजनीति अपनी चिंगारी से आसानी से दुरूपयोग में ले सकती है। वर्तमान में हमारा धर्म इसी मोड़ पर खड़ा है इसलिए धर्म को, इसकी आवष्यकता को, इसके विकास के पहलुओं को और लोगों के जीवन के धर्मनिरपेक्ष व्यवहार का इसके साथ समन्वित व संगत होना अपेक्षित है। इस हेतु धर्मदर्षन के उद्देष्य को प्रो. निकोलसन के शब्दों में सही ढंग से समझा जा सकता है "धर्म दर्षन का उद्देष्य धार्मिक विष्वासों का अन्य मौलिक विष्वासों के साथ जो मानव जीवन को संचालित करते हैं, संयोजन स्थापित करना है" क्प्जे चनतचवेम पे जव मंमिबज ंद पदजमहतंजपवद वि तमसपहपवने इमसपर्मो पजी जीवेम वजीमत निदकंउमदजंस इमसपर्मो जींज हपअम वितउ ंदक कपतमबजपवद जव उंदेष सपमि ए श्रवीद ।ण छपबीवसेवद.चेपसवेवचील वि त्मसपहपवदए च्हम. 6द्व

धर्म को सामान्यतः मनुष्य का श्रद्धामूलक या भावनात्मक पक्ष स्वीकारा जाता है और यह उचित प्रतीत भी होता है परन्तु श्रद्धामूलक होना व अबौद्धिक होना एक नहीं है। अबौद्धिक प्रवृत्ति तर्क व अनुभव के विपरीत स्वभाव रखती है इसे अन्धविष्वास के रूप में ही स्वीकारा जा सकता है। यह किसी भी समाज के लिए स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं है, इस प्रवृत्ति के साथ शान्ति, समन्वय, सौहार्द स्थापित नहीं किया जा सकता और संवाद इसके उन्मूलन के लिए ही उपयुक्त कहा जा सकता है। धर्म इससे भिन्न है जो मनुष्य की सर्वांगपूर्ण अभिवृत्ति कही जाती है जिसके ज्ञानात्मक, रागात्मक व क्रियात्मक तीनों पक्ष हैं और इन तीनों पक्षों का बुद्धि व सामान्य अनुभव का विरोधी नहीं होना ही धर्म की स्वस्थ सामाजिक प्रवृत्ति है।

धर्म को अबौद्धिक कहना मानवीय भावना के साथ अन्याय प्रतीत होता है। हाँ, यह अवष्य कहा जा सकता है कि धर्म अतिबौद्धिकता या शुद्ध बौद्धिकता का विरोधी है। श्रद्धा व तर्क दो विपरीत सिरे नहीं हैं। तर्क श्रद्धा को

समझने–समझाने के साथ, श्रद्धा के बनने की प्रक्रिया में सहयोगी है इसलिए धार्मिक श्रद्धा सभी रूपों में अंधश्रद्धा है यह एक अति बौद्धिक वैज्ञानिक दृष्टि का पूर्वाग्रह है जो श्रद्धावान् समाज के प्रति असंवेदनषील होकर बौद्धिकता व तर्कसंगतता की धर्म से दूरी बढ़ा देता है और प्रतिक्रियास्वरूप भावनात्मक पक्ष धर्म के ज्ञानात्मक पक्ष पर हावी हो जाता है यहाँ शान्ति बिगाड़ने का दोष धर्म की भावनात्मक जकड़ के साथ उसके प्रति किया गया गलत व्यवहार भी है। भारत में धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को स्थापित करने के बुद्धिजीवी प्रयास ने एक पूरा धार्मिक आन्दोलन खड़ा करवा दिया जिसकी भूमिका को साम्प्रदायिकता की हवा देने वाला माना जा सकता है।

धर्म, धर्मावलम्बियों के लिए एक ऐसे जीवन की स्वीकृति है जो अपने से बाहर स्त्रोत को मान्यता देता है यह स्त्रोत न सिर्फ उनकी दृष्टि में पवित्र व आदर्षपूर्ण है, साथ ही उसकी सामाजिक नैतिकता का उत्कृष्ट रूप है। जिसकी वह उपासना करता है, उसके प्रति प्रतिबद्धता व समर्पण रखते हुए वह अपनी निर्भरता उस सत्ता के प्रति मानता है इस प्रकार धर्म का भावनात्मक पक्ष क्रियात्मक पक्ष से अलग नहीं हो सकता। यहीं हम धर्म के वास्तविक रूप का दर्षन भी करते हैं और धर्म और सदाचार की घनिष्ठता भी पाते हैं। साम्प्रदायिक दंगों में धर्म व सदाचार का यह सम्बन्ध टूटता है, अपने से बाहर स्थित स्त्रोत पर अविष्वास कर हम निर्णय अपने हाथ में ले लेते हैं, ईष्वर हमारा रक्षक है यह भूलकर हम उसके रक्षक हो जाते हैं, क्या यह संभव है ? यदि है तो ईष्वरीय सहायता या ईष्वर से याचना की आवष्यकता ही नहीं है। साम्प्रदायिक दंगा, धार्मिक अस्मिता की लड़ाई तार्किक रूप से ईष्वर की श्रेष्ठता के प्रतिकूल है उसके सर्वोच्च होने के प्रत्यय के भी विपरीत है। इस संवेदनषीलता को उभारना धार्मिक सद्भाव की आवष्यकता है न कि धर्मावलम्बियों को धर्म के ठेकेदारों के हाथों में कठपुतली बनाकर छोड़ देना। लोगों की भावनाओं का बेजा इस्तेमाल, उन्हें भड़काना, गुमराह करना, मतान्धता फैलाना कठोर रूप से गैरकानूनी घोषित होना चाहिए। धर्म एक स्वस्थ वृत्ति का क्षेत्र है इसमें साम्प्रदायिकता भड़काना धार्मिक भ्रष्टाचार का रूप माना जाना चाहिए। जिस प्रकार षिक्षा, व्यापार, प्रषासन में भ्रष्टाचार होता है वैसा ही धर्म भी मनुष्य की आवष्यकता का क्षेत्र है। धर्म के प्रति सकारात्मक रूख और साम्प्रदायिकता के प्रति कठोर रूख ही वास्तविक सर्वधर्मसद्भाव है। धर्मनिरपेक्षता और तुष्टिकरण दोनों ही धर्म को अस्वस्थ्य दृष्टि से देखने के परिणाम हैं। तुष्टिकरण धर्म की प्रगति में बाधक तत्त्व है। बहुधार्मिक बहुसांस्कृतिक समाज में अल्पसंख्यक समुदाय के प्रति अन्याय न होने देना राज्य का कर्त्तव्य है। आर्थिक, शैक्षिक व सामाजिक स्तर को चिन्हित करने के लिए धार्मिक समूहों की पहचान सामाजिक न्याय कहा जा सकता है, परन्तु आपराधिक मामलों में नागरिक के नाते कानून द्वारा समान न्यायव्यवस्था होनी चाहिए। इस न्याय व्यवस्था में धर्माधारित भेद अनैतिक व अन्यायपूर्ण व्यवस्था है। बहुधार्मिक व बहुसांस्कृतिक समाज में मत–मतान्तर की समस्या जितनी शान्ति विरोधी है उससे अधिक समस्या तुष्टिकरण द्वारा पैदा की जाती है। तुष्टिकरण की यदि संभावनाएँ समाप्त कर दी जाय तो मत–मतान्तर का हल परस्पर संवाद से ही संभव है क्योंकि सहअस्तित्व हमारी जरूरत है।

धर्म और शान्ति के सहअस्तित्व के लिए विभिन्न आस्थाओं के मध्य संवाद वांछनीय है। धार्मिक श्रद्धाओं के विभिन्न रूप हैं जो किसी अलौकिक सत्ता, महापुरूष, व्यक्ति, ग्रन्थ, देष, काल संस्कृति विचार के अनुरूप होती है। इन श्रद्धाओं से जुड़े विषयों पर साहित्य व कला के सृजन में आस्था के प्रति संवेदनषीलता आवष्यक है। धार्मिक श्रद्धाएं जिस विषय–वस्तु से सम्बद्ध होती हैं उस पर यथार्थपरक बुद्धिवादी सृजन का कोई औचित्य नहीं है। यह धार्मिक सूकून में वृद्धि करने वाली हो तो उचित है मनोरंजन, सनसनी या लोकप्रियता के लिए धार्मिक प्रतीकों, मिथकों, चित्रों का प्रयोग या अनावष्यक अन्यों की धार्मिक आस्था में दखल प्रषंसनीय नहीं हो सकते परन्तु ईषनिन्दा के नाम पर हिंसा, फतवे जारी करना, ईनाम घोषित करना आदि कृत्य भी धर्मानुकूल नहीं कहे जा सकते। धर्म को ईष्वरीय न्याय के साथ सांसारिक न्याय व्यवस्था के प्रति सम्मान रखना चाहिए तथा न्याय व्यवस्था को श्रद्धा की उपयुक्तता को जाँचना चाहिए। यह कोई असंज्ञानात्मक क्षेत्र नहीं है। धर्म मनुष्य की सामूहिक प्रवृत्ति अवष्य है परन्तु धर्म का संस्थागत रूप संविधान या कानून के अधीन ही रहना चाहिए। धर्म अलौकिक सत्ता के प्रति आस्था है परन्तु संस्थागत रूप के सारे सरोकार शुद्ध सांसारिक हैं। इन पर अंकुष सभी धर्मों के लिए समान रूप से होना चाहिए। धर्म आचरण से अनिवार्यतः सम्बद्ध है परन्तु यह आचरण सामाजिक नैतिक मान्यताओं से विपरीत नहीं हो सकता। कोई भी धर्म अपने संस्थागत रूप को बढ़ा सकता है परन्तु यह किसी व्यक्ति के धार्मिक विष्वास व अनुभूति को बाधित नहीं कर सकता। धार्मिक विष्वास या अनुभूति के आधार पर ही श्रद्धा को समझा जा सकता है। इस श्रद्धा का स्वरूप व्यक्ति की निजी स्वतन्त्रता है यदि धर्मों के मध्य स्वस्थ संवाद हो तो हमारी श्रद्धा का स्वरूप एक बहुधार्मिक समाज के अनुरूप उदात्त ही होगा। इस उदार भावना को अधार्मिक कहना धार्मिक जड़ता है। यह उदात्त रूप श्रद्धा भारत के लिए नयी नहीं है, यहाँ मन्दिर व दरगाह दोनों में एक ही व्यक्ति समान रूप से जाने की चाह रख सकता है। जात–पात धर्म के घोषित क्षेत्र से अलग मध्यकालीन धर्म सुधारकों ने धर्म के रचनात्मक पक्ष को हमारे समक्ष रखा है। धर्म के संस्थागत रूप की जड़ता पर चोट करते हुए आचरण व नैतिकता आधारित धर्म ही शान्ति के साथ संभव हो सकता है अन्यथा धर्म का संस्थागत रूप तो पूंजीवाद का एक चेहरा है जिससे सदाचार व मूल्यों की अपेक्षा करना बेमानी है। बाजार की प्रतिस्पर्धा हर बाजारी उत्पाद पर लागू है फिर बाजारवाद के इस युग में धर्म जो मुनाफे का व्यापार है उसके लिए न व्यक्तिगत शान्ति और न सामाजिक शान्ति कोई उद्देष्य है।

एक बहुधार्मिक बहुसांस्कृतिक समाज में परस्पर आदर, सहिष्णुता का षिक्षण आवष्यक है परन्तु मात्र दूसरे की श्रद्धा में दखल न देना सहिष्णुता नहीं है अपितु परस्पर एक दूसरे के मनोभावों को समझना, मतान्तर को आदर देना,

सहयोग व सदाचार से विष्वास जीतना और किसी प्रकार से मदद करने पर भी श्रद्धा परिवर्तित करने के लिए न उकसाना एक उदार लोकतान्त्रिक बहुधार्मिक समाज में समरसता के लिए वांछनीय है। श्रद्धाओं के मध्य तर्क आधारित संवेदनषील संवाद का रास्ता यदि आस्था परिवर्तन की ओर ले जाय तो इसे स्वीकार करने की उदारता भी धर्मों में होनी चाहिए। डा. अम्बेडकर का बौद्ध धर्म ग्रहण धर्म के स्वतन्त्र चुनाव का मानक रूप माना जा सकता है। वही विवाह सम्बन्ध के लिए धर्म परिवर्तन एक कानूनी दुरूपयोग है। धर्म का सदुपयोग और दुरूपयोग विभिन्न धर्मों के मध्य संवाद का पक्ष होना चाहिए ना कि अपनी संख्या बल, श्रेष्ठता व प्राचीनता को सिद्ध करना। धर्म का आरम्भ प्राकृतिक आष्चर्य व भय से हुआ था इसे मानने में कोई दोष नहीं दिखता परन्तु अपनी विकास प्रक्रिया में आज धर्म भावनात्मक सुकून के लिए एक मानवीय मांग है जो बढ़ते उपभोक्तावाद, हिंसा–द्वेष, लालच से भिन्न शान्ति का मार्ग प्रषस्त कर सकता है। यह मार्ग श्रद्धायुक्त होना चाहिए परन्तु बुद्धि व अनुभव विरोधी नहीं होना चाहिए। यही धर्म का आध्यात्मिक स्वरूप है जो वर्तमान में प्रासंगिकता रखता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. धर्म दर्षन की रूपरेखा, डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा

2. धर्म का समाजषास्त्र, डॉ. एम.एम.लवानिया व शषि के. जैन

3. धर्मनीति, मोहनदास करमचन्द गाँधी

4. हिन्दुत्व और उत्तर आधुनिकता, सुधीष पचौरी